श्री

पराप्रवेशिका

अनन्त श्री विभूपित गुरुवर श्री स्वामी जी की स्मृति में

चतुर्थ पुष्प

श्री मन्महामाहेश्वराचार्य क्षेमराज विरचिता

हिन्दी पद्यानुवाद
एवं
हिन्दी टीका

अनुवादक एवं टीकाकार

श्री कृष्णानन्द जी बुधौलिया, वेदान्त शास्त्री

दतिया (म०प्र०)

श्री

पराप्रवेशिका

अनन्त श्री विभूषित गुरुवर श्री स्वामी जी की स्मृति में

चतुर्थ पुष्प

श्री मन्महामाहेश्वराचार्य क्षेमराज विरचिता

हिन्दी पद्यानुवाद
एवं
हिन्दी टीका

अनुवादक एवं टीकाकार
श्री कृष्णानन्द जी बुधौलिया, वेदान्त शास्त्री
दतिया (म० प्र०)

पराप्रवेशिका

प्रकाशक : श्री पीताम्बरा पीठ संस्कृत परिषद्
दतिया (म० प्र०)

टीकाकार : श्री कृष्णानन्द जी बुधौलिया, वेदान्त शास्त्री
दतिया (म० प्र०)

संवत् : २०३७, सन् १९८०

मुद्रक : शिवशक्ति प्रेस प्रा० लि०
ग्रेट नाग रोड, नागपुर-९

मूल्य : पचहत्तर पैसा केवल

प्रकाशकीय

पूर्व में श्री पीताम्बरा पीठ संस्कृत परिषद् द्वारा प्रत्यभिज्ञा हृदय, षट्त्रिंशत्तत्वसंदोह तथा पराप्रवेशिका ये तीन ग्रन्थ एक साथ ही हिन्दी व्याख्यासहित प्रकाशित किये गये थे। अब तीनों ग्रन्थों को अलग अलग हिन्दी व्याख्या सहित प्रकाशित करने का परिषद् का लक्ष्य है। प्रस्तुत ग्रन्थ उसी योजना का एक अंग है। परा प्रवेशिका शाक्त दर्शन का श्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसका हिन्दी अनुवाद पं. कृष्णानन्द बुधौलिया वेदान्त शास्त्री ने किया है। अनुवादक ने सरल, सुबोध एवं विस्तृत व्याख्या करके ग्रन्थ को शाक्त दर्शन के जिज्ञासुओं के लिये सहज बना दिया है। पं. बुधौलिया जी पीठ के ही अंग हैं उनके द्वारा अभी और भी कार्य साधकों के हित के लिये होना है। वे निरन्तर संस्कृत परिषद् के अभ्युत्थान के कार्य में लगे रहते हैं। मैं उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूं। पुस्तक के प्रकाशन का समस्त व्यय भार पं. शिवनाथ शर्मा (बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, नागपुर) ने वहन किया है तदर्थ भगवती पीताम्बरा माता से उनके कल्याण की कामना करता हूं।

विनीत
ललिता प्रसाद शास्त्री
मंत्री
श्री पीताम्बरा पीठ संस्कृत परिषद्
दतिया (म० प्र०)

दीपावली
सं. २०३७

ब्रह्मलीन
श्री पीताम्बरा पीठाधीश्वर राष्ट्रगुरु परमपूज्य श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज, वनखण्डेश्वर, दतिया (म०प्र०)

॥ श्री ॥

अथ पराप्रवेशिका

श्री मन्महा माहेश्वराचार्य क्षेमराज विरचिता

विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां हृदयं परमेशितुः ।
परादि शक्ति रूपेण स्फुरन्तीं संविदं नुमः ॥१॥

पद्यानुवाद

जो विश्व रूप से परे, वही है विश्व रूप में विकसित,
परम ईश का हृदय वही है, जिसमें जग उपसंहृत ।
परा आदि रूपों में जिसका होता है प्रस्पन्द,
उसी शक्ति संवित् का वन्दन, वही सच्चिदानन्द ॥

संस्कृत-टीका

इह खलु परमेश्वरः प्रकाशात्मा, प्रकाशश्च विमर्श-स्वभावः ।

विमर्शो नाम विश्वाकारेण, विश्वप्रकाशेन, विश्वसंहरणेन च अकृत्रिमाहम् इति विस्फुरणम् । यदि निर्विमर्शः स्यात् अनीश्वरो जडश्च प्रसज्येत ।

एष एव चित्, चैतन्यं, स्वरसोदिता परावाक्, स्वातन्त्र्यं, परमात्मनो मुख्यमैश्वर्यं, कर्तृत्वं, स्फुरता, सारो, हृदयं, स्पन्दः इत्यादि शब्दैरागमेषूद्घोष्यते, अतएव अकृत्रिमाहमिति सतत्त्वतः

स्वयं प्रकाश रूप: परमेश्वर: पारमेश्वर्या शक्त्या, शिवादि-धरण्यन्त जगदात्मना स्फुरति प्रकाशते च ।

एतदेव अस्य जगत: कर्तृत्वमजडत्वञ्च, जगत: कार्यत्वमपि एतदधीन प्रकाशत्वमेव, एवं भूतं जगत् प्रकाशरूपात् कर्तुर्महेश्वरादभिन्नमेव । भिन्न वेद्य प्रकाशत्वेऽप्रकाशमानत्वेन प्रकाशनायोगात् न किञ्चित् स्यात् ।

अनेन च जगता अस्य भगवत: प्रकाशात्मकं रूपं न कदाचित् तिरोधीयते, एतत्प्रकाशनेन प्रतिष्ठां लब्ध्वा प्रकाशमानमिदं जगत् आत्मन: प्राणभूतं कथं निरोद्धुं शक्नुयात्, कथं च तन्निरुध्य स्वयमवतिष्ठेत् अतश्चास्य वस्तुन: साधकमिदं, बाधकमिदं प्रमाणमित्यनुसंधानात्मक–साधक बाधक प्रमातृरूपतया चास्य सद्भाव: ।

तत्सद्भावे किं प्रमाणम् ? इति वस्तुसद्भावमनुमन्यतां तादृक् स्वभावे किं प्रमाणम् ?

इति प्रष्टृरूपतया च पूर्वसिद्धस्य महेश्वरस्य स्वयंप्रकाशत्वं सर्वस्य स्वसंवेदनसिद्धम् । किञ्च प्रमाणमपि यमाश्रित्य प्रमाणभवति तस्य प्रमाणस्य तदधीन शरीरप्राणनीलसुखादि वेद्यं चातिशय्य सदा भासमानस्य वेदकैकरूपस्य सर्वप्रमिति भाज: सिद्धौ अभिनवार्थ प्रकाशस्य प्रमाणवराकस्य कश्चोपयोग: ।

एवं च शब्दराशिमयपूर्णाहन्तापरामर्श सारत्वात् परमशिव एव षट्त्रिंशत्तत्वात्मक: प्रपञ्च: ।

षट्त्रिंशत्तत्वानि च :–१) शिव २) शक्ति ३) सदाशिव ४) ईश्वर ५) शुद्ध-विद्या ६) माया ७) कला ८) विद्या

९) राग १०) काल ११) नियति १२) पुरुष १३) प्रकृति १४) बुद्धि १५) अहङ्कार १६) मन १७) श्रोत्र १८) त्वक् १९) चक्षु २०) जिह्वा २१) घ्राण २२) वाक् २३) पाणि २४) पाद २५) पायु २६) उपस्थ २७) शब्द २८) स्पर्श २९) रूप ३०) रस ३१) गन्ध ३२) आकाश ३३) वायु ३४) वह्नि ३५) सलिल ३६) भूमयः इत्येतानि ।

अथैषां लक्षणानि । तत्र : शिव तत्त्वं नाम इच्छाज्ञान क्रियात्मक केवल पूर्णानन्दस्वभावरूपः परमशिव एव ॥१॥

शक्ति-तत्त्व : अस्य जगत्स्रष्टुमिच्छां परिगृहीतवतः परमेश्वरस्य प्रथम स्पन्द एव इच्छा शक्ति तत्त्वमप्रतिहतेच्छ-त्वात् ॥२॥

सदाशिव तत्त्वं : सदेवाङ्कुरायमाणमिदं जगत् स्वात्मना-हन्तयाच्छाद्यस्थितं रूपं सदाशिव तत्त्वम् ॥३॥

ईश्वर तत्त्वं : अङ्कुरितं जगदहन्तयावृत्य स्थितमीश्वर-तत्त्वम् ॥४॥

शुद्ध विद्या तत्त्वं : अहन्तेदन्तयोरैक्यप्रतिपत्तिः शुद्ध विद्या ॥५॥

माया तत्त्वं : स्वस्वरूपेषु भावेषु भेदप्रथा माया ॥६॥

यदा तु परमेश्वरः पारमेश्वर्या मायाशक्त्या स्वरूपं गूह-यित्वा सङ्कुचित ग्राहकतामश्नुते तदा पुरुषसंज्ञः । अयमेव मायामोहितः कर्मबन्धनः संसारी । परमेश्वरादभिन्नोऽपि अस्य मोहः परमेश्वरस्य न भवेत्—इन्द्रजालमिव ऐन्द्रजालिकस्य स्वेच्छया संपादितभ्रान्तेः, विद्याभिज्ञापितैश्वर्यस्तु चिद्घनो

मुक्तः परमशिव एव । अस्य सर्वकर्तृत्वं, सर्वज्ञत्वं, पूर्णत्वं, नित्यत्वं, व्यापकत्वञ्च शक्त्योऽसंकुचिता अपि संकोचग्रहणेन कला-विद्या-राग-काल नियति रूपतया भवन्ति ।

कला : अत्र कला नाम अस्य पुरुषस्य किंचित्कर्तृता हेतुः ॥७॥

विद्या : विद्या किञ्चिज्ज्ञत्व कारणम् ॥८॥

राग : रागो विषयेष्वभिष्वङ्गः ॥९॥

काल : कालो हि भावानां भासनाभासनात्मकानां क्रमोऽवच्छेदको भूतादिः ॥१०॥

नियतिः : ममेदं कर्तव्यं नेदं कर्तव्यम् इति नियम हेतुः ॥११॥

एतत् पञ्चकमस्य स्वरूपावरकत्वात् कञ्चुकमिति उच्यते ।

प्रकृतिः : महदादि-पृथिव्यन्तानां तत्त्वानां मूलकारणं प्रकृतिः, एषा च सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था अविभक्त रूपा ॥१३॥

बुद्धिः : निश्चयकारिणी विकल्प प्रतिबिम्वधारणी बुद्धिः ॥१४॥

अहङ्कारो नाम-ममेदं न ममेदमित्यभिमानसाधनम् ॥१५॥

मनः सङ्कल्प साधनम् । एतत्त्रयमन्तःकरणम् ॥१६॥

शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धात्मकानां विषयाणां क्रमेण ग्रहण साधनानि श्रोत्र-त्वक्चक्षुजिह्वा-घ्राणानि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि ॥१७-२१॥

वचनादान–विहरण–विसर्गानन्दात्मक्रियासाधनानि परिपाट्या वाक्–पाणि–पाद–पायूपस्थानि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि । २२-२६।।

शब्द–स्पर्श–रूप–रस–गन्धाः सामान्यकाराः पञ्च तन्मात्राणि ।।२७-३१।।

आकाशमवकाशप्रदम्, वायुः सञ्जीवनम्, अग्निर्दाहकः पावकश्च, सलिलमाप्यायकं द्रव्यरूपं च, भूमिर्धारिका।।३२-३६।।

परा प्रवेशिका--भाषा टीका

महा माहेश्वराचार्य क्षेमराज ने ग्रन्थ के प्रथम श्लोक में परमेश्वर की हृदय- रूपा संवित् देवी को, जो विश्वमयी है तथा विश्व से उत्तीर्ण भी है, एवं जिसका परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी चार रूपों में स्फुरण होता है, अपना नमस्कार निवेदन किया है ।

सम्प्रदाय के सिद्धान्त के अनुसार टीकाकार ने परमेश्वर को प्रकाशात्मक एवं प्रकाश को विमर्शात्मक निरूपित किया है ।

विश्व के आकार, प्रकाश एवं संहार के रूप में जिस अकृत्रिम अर्थात् नैसर्गिक 'अहम्' का विस्फुरण होता है उसको विमर्श नाम से संबोधित किया है ।

यदि प्रकाश को स्वाभाविक विमर्शात्मक विस्फुरण से रहित कल्पित किया जावे तब प्रकाशात्मक शिव को अनीश्वर अर्थात् ईश्वरत्व से रहित, निष्क्रिय एवं जड रूप कल्पित करना होगा । कल्याणी स्तोत्र में कहा है 'त्वां विना जाड्यमान् सः' । अर्थात् शक्ति के विना शिव जड है । उसमें जन्म, स्थिति, लय,

तिरोधान एवं अनुग्रह नामक पंचकृत्यों के सम्पादन की शक्ति विमर्श के कारण ही उत्पन्न होती है।

संस्कृत टीका में अहं के स्वाभाविक, प्राकृतिक अथवा अकृत्रिम स्फुरण को विमर्श कहा गया है। वेदान्त में अहं को ब्रह्म स्वरूप प्रतिपादित किया है,श्रुति कहती है 'अहं ब्रह्मास्मि'। तथा श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा है "अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा"। अर्थात् समस्त जगत् की उत्पत्ति एवं प्रलय का कारण अहं ही है।

गीता में अन्यत्र भी कहा गया है :–

"सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो,.....वेदैश्च सर्वेरहमेव वेद्यो, वेदान्त कृद्वेदविदेव चाहं।" तथा "अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते"। आदि वाक्यों से स्पष्ट है कि शिव तत्त्व से नैसर्गिक रूप में जिस अहं का वि फुरण होता है वही जगत् का कारण है जिसको विमर्श संज्ञा दी गई है। काम कला–विलास के टीकाकार सिद्ध नटनानन्दनाथ ने भी विमर्श को 'अनवधिकाकार विस्फुरण' शक्ति कहा है। अर्थात् शिव की असीम स्फुरता ही विमर्श है। ग्रन्थकार कहता है कि परशिव रूपी रवि की किरणों का प्रतिबिम्ब विशद विमर्श रूपी दर्पण में प्रतिफलित होता है। विमर्श को दर्पण इसलिये कहा गया है कि इसमें स्वयं शिव का स्वरूप प्रकाशित होता है। जिस प्रकार सूर्य के सामने रखे हुए दर्पण के तल से किरणों के द्वारा तेजो-बिन्दु अर्थात् सूर्य के बिम्ब का समीप की वस्तु पर प्रत्यक्ष दर्शन होता है उसी प्रकार चित्त रूपी दर्पण में प्रकाश के स्व-स्वरूप का विमर्शात्मक सम्बन्ध होने पर महाबिन्दु अर्थात् पूर्ण अहम् रूप परमेश्वर का अवभास होता है।

अहं ब्रह्म के आत्म स्मरण के अनुभव का अभिव्यञ्जक है। वृहदारण्यक श्रुति कहती है :–"सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्यत्सोऽहमस्मीत्यग्रे व्याहरत्"। आत्मा ने स्वयं का अन्वीक्षण किया तथा अपने से अन्य किसी को नहीं देख कर "अहमस्मीति" "यह सब मैं ही हूं" ऐसा कहा। मैं का अर्थ अहं है अतः सर्व प्रथम अहं नाम का उच्चारण करने से उस आत्मा को अहं नाम से जाना जाने लगा। आगम शास्त्र में भी प्रकाश की आत्म विश्रान्ति को अहं नाम से कहा गया है यथा :–"प्रकाशस्यात्मविश्रान्तिरहं भावो हि कीर्तितः"।

अहं शब्द में अकार एवं हकार का स्वरूप स्पष्ट रूप में व्यक्त है तथा यहां अकार एवं हकार का सामरस्य विवक्षित है जैसा कि काम कला विलास में लिखा है :–

"चित्तमयोऽहंकारः सुव्यक्ताहार्णं समरसाकारः"।

अकार वर्णमाला का प्रथम अक्षर है तथा हकार अन्तिम अक्षर है। अकार एवं हकार के मध्य में ही सम्पूर्ण वर्णमाला व्यवस्थित है अतः प्रत्याहार न्याय से सम्पूर्ण वर्णमाला का संक्षिप्त स्वरूप अहं है इसका आशय है कि अहं के अन्तः में समस्त वर्णमाला समाविष्ट है। 'अ' प्रकाश रूप शिव का द्योतक है तथा 'ह'कार शक्ति का–जैसा कि कहा है :–

"अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।
हकारोऽन्त्यः कलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः॥"

तात्पर्य यह है कि 'अहं' प्रकाश तथा विमर्श का सम्पुटित स्वरूप है। शिव एवं शक्ति का ही पर्याय प्रकाश तथा विमर्श

है। शिव एवं शक्ति के सामरस्यात्मक सम्पुटित स्वरूप का नाम ही ब्रह्म है। आगम शास्त्र में इसको ही परा, त्रिपुरेश्वी, त्रिपुरसुन्दरी आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। यही अन्तिम सत्य है (स्त्रीरूपं वा स्मरेद्देवीं–पुं रूपं वा संस्मरेदिति आदि) शिव-शक्ति आगम के सिद्धान्त के अनुसार सामरस्यात्मक वस्तु ही वस्तुत: अद्वैत ब्रह्म तत्त्व है। इसकी ही उपासक पुं रूप में अथवा स्त्री रूप में आराधना करते हैं। पुरुष नाम में इसको परब्रह्म, परशिव, परभैरव आदि नामों से तथा स्त्री रूप में परा, भैरवी, त्रिपुरेश्वरी, त्रिपुरसुन्दरी आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। समस्त शब्दात्मक एवं अर्थात्मक प्रपञ्च का विकास शिव शक्ति के सामरस्यात्मक स्वरूप से ही होता है। अहम् शिवशक्ति के सामरस्य का अभिव्यञ्जक है अतएव अहं के गर्भ से ही शब्दार्थात्मक विश्व प्रपञ्च की उत्पत्ति आगम शास्त्र में निरूपित की गई है। तापनीय उपनिषत् में भी कहा है :–

"कस्त्वमित्यहमिति होवाच। अहमेवेदं सर्वंभू। तस्मादेवाहमिति सर्वाभिधानमिति"। अर्थात् तुम कौन हो ऐसा प्रश्न करने पर उत्तर मिला कि यह समस्त (प्रपञ्च) मैं (अहं) ही हूं अत: विश्व रूप में विकसित समस्त प्रपञ्च का नाम अहं कहा जाने लगा। यह अहंकार ही सब का कारण है। अत: कहा है "तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धै: प्रमुच्यते"। अहं ब्रह्म ही है ऐसा ज्ञान होने पर सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार अहात्मक अर्थात् प्रकाश–विमर्शात्मक शिव-शक्ति के समारस्य रूप ब्रह्म की उपासना ही यहां अभिप्रेत है तथा प्रकाश एवं विमर्श में अविनाभाव (नित्य) सम्बन्ध है अत:

शिव भी शक्ति के नित्य सम्बन्ध के कारण चिद्रूप है। इस प्रकार सर्वत्र चित्प्रकाश का ही साम्राज्य है।

एष एव च विमर्शः......घोष्यते।

आगम शास्त्र में इस विमर्श की चित्, चैतन्य, स्वरसोदिता परावाक्, स्वातन्त्र्य, परमात्मा का मुख्य ऐश्वर्य, कर्तृत्व, स्फुरत्ता, सार, हृदय, स्पन्द इत्यादि नामों से घोषणा की गई है। प्रसंगवश उपर्युक्त पर्यायवाची शब्दों के अर्थ नीचे दिये जाते हैं।

शैवागमसिद्धान्त में संवित्-प्रकाश को विमर्श-प्रधान निरूपित किया गया है। यह चैतन्य विमर्श ही है। चैतन्य आत्मा का मुख्य रूप है अतः धर्म वाची चैतन्य शब्द के द्वारा विमर्श का ही निर्देश किया गया है। इसका एक नाम स्व–रसोदिता-परावाक् भी है। व्युत्पत्ति के अनुसार वक्ति इति वाक् तथा विश्वमभिलपति प्रत्यवमर्शनेनेति वाक्। अर्थात् जो प्रत्यवमर्शन के द्वारा विश्व को व्यक्त करती है उसका नाम वाक् शक्ति है। उत्पत्ति से पूर्व विश्व विमर्श के अन्तर्गत लीन रहता है जो उत्पत्ति के समय वाणी द्वारा प्रकट होता है। वही वाक् शक्ति अन्य परामर्शों का आधार होने के कारण तथा पूर्णत्व के कारण परा नाम से सम्बोधित की जाती है। (सैव परामर्शान्तराणामाधारभूतत्वात् पूर्णत्वाच्च परा)। वही परा वाक् अपने अनवरुद्ध प्रसार के कारण अहमात्मक परिपूर्ण चिद्-रूप से सदा उदित होते रहने के कारण स्वरसोदित कही गई है। (अतएव अनिरुद्ध प्रसरत्वात् अहमिति परिपूर्ण चिद्वपुषा सदोदितत्वात् स्वरसोदिता)।

स्वातन्त्र्य को भी विमर्श का पर्यायवाची कहा गया है। शिव-सूत्र-विमर्शनी में समस्त ज्ञान क्रिया से सम्बन्धित परिपूर्ण चैतन्य को स्वातन्त्र्य शक्ति नाम से सम्बोधित किया है। बोध पञ्चदशिका में भी कहा है "यह भैरव नामक परम देव विमर्शात्मिका देवी के साथ नित्य क्रीडा के लिये उत्सुक रहता है तथा अपनी शक्ति के द्वारा एक ही समय में विचित्र प्रकार की सृष्टि एवं संहार क्रिया करने में तत्पर है। इसी अत्यन्त दुर्घट कार्य करने की शक्ति को उसकी बोध रूप ऐश्वर्यपूर्ण स्वातन्त्र्य शक्ति कहा गया है। सृष्टि–संहार–कारिणी यह स्वातन्त्र्य नामा शक्ति भैरव देव के अन्तः में स्थित है। कहा है :–

"अति दुर्घटकारित्वमस्यानुत्तममेव यत् ।
एतदेव स्वतन्त्रत्वमैश्वर्यं बोधरूपता" ॥ आदि।

यह स्वातन्त्र्य जडत्व से विलक्षण कहा गया है। इसके द्वारा संयोजन एवं वियोजन का कार्य सम्पन्न होता है। अर्थात् शिव अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति के द्वारा विश्व को इस प्रकार संयोजन करता है कि यह इदं नाम से कथित जगत् इस प्रकार प्रतीत होता है जैसे यह शिव से बाहर है। तथा वियोजन अर्थात् विघटन शक्ति के द्वारा पुनः अपने अन्तः में लीन कर लेना है। आदि परमात्मा का ऐश्वर्य यही कहा जाता है कि सृष्टि संहार आदि कार्यों में उसको किसी अन्य की अपेक्षा नहीं होती है। कर्तृत्व का अर्थ है अलौकिक कार्य-कारण भाव से स्वान्तस्थ प्रकाश के द्वारा शिव से पृथ्वी पर्यन्त विश्व का योगियों के समान उन्मीलन करना। सार का अर्थ है महान रूपता।

विमर्श का एक पर्याय हृदय भी है। हृदय का अर्थ है विश्व की प्रतिष्ठा अर्थात् सत्ता का स्थान। विमर्श के अन्तः गर्भ से ही विश्व की सृष्टि होती है तथा प्रलय काल में भी विमर्श के अन्तः में विश्व की स्थिति रहती है समूल नाश नहीं होता है। शास्त्र में इस सिद्धान्त को सत्कार्यवाद कहा है। जिस प्रकार हृदय से ही समस्त नाडियों का उद्गम होता है तथा हृदय में ही विलय होता है उसी प्रकार विमर्श से ही विश्व का उदय एव विमर्श में हो अन्तः- लीन होने के कारण इसको हृदय नाम से कहा गया है। जैसा कि कहा है :-

"सा स्फुरता महासत्ता देशकालाविशेषणी।
सैषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेशितुः॥"

विमर्श के पर्यायवाची नामों में स्पन्द शब्द अत्यन्त महत्व-पूर्ण है। अचल चित्प्रकाश रूप शिव का चलत्तात्मक आभास ही स्पन्द है। इस विषय पर पृथक् से आचार्यों द्वारा स्पन्द कारिका नामक पुस्तक लिखी गयी है तथा स्पन्द–संदोह, स्पन्द–निर्णय आदि टीकाओं की रचना की गई है।

इस प्रकार विमर्श के नाम से प्रसिद्ध अकृत्रिम अहमात्मक स्फुरण का अर्थ है कि स्वयं प्रकाश रूप परमेश्वर अपनी पारमेश्वरी शक्ति के योग से सतत्त्व अर्थात् शिव तत्त्व से पृथ्वी पर्यन्त छत्तीस तत्त्वों के रूप में स्वयं स्फुरित एवं प्रकाशित होता है। परमेश्वर के इस प्रकार जगत् के रूप में स्फुरण एवं प्रकाशन का नाम ही अजड़त्व है तथा इसी को परमश्वर का पारमार्थिक कर्तृत्व नाम से व्यवहृत किया गया है। कार्य रूप

जगत् का प्रकाशन भी इसी के अधीन है। इस प्रकार उद्भूत जगत् प्रकाश रूप कर्ता महेश्वर से अभिन्न है। यदि जगत् को वेद्य के रूप में शिव से भिन्न माना जावे तब प्रकाश से अप्रकाशित होने के कारण इसका अस्तित्व ही सम्भव नहीं है। सिद्धान्त है कि जो प्रकाशित नहीं है उसकी सत्ता ही स्वीकार नहीं की जा सकती।

यहां शङ्का हो सकती है कि यदि जगत् को परमेश्वर से अभिन्न स्वीकार किया जावे तब प्रकाश से एकरूप हो जाने के कारण स्वयं जगत् भी प्रकाश रूप हो जावेंगे। और इस प्रकार प्रकाश तथा विमर्श में सारूप्य भेद स्थापित होगा किन्तु प्रकाश में किसी प्रकार के भेद की कल्पना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त सारूप्य भेद से कल्पित प्रकाशमय जगत् में परमेश्वर के तिरोधान की सम्भावना हो सकती है। किन्तु यह शङ्का सम्भव नहीं है क्योंकि जगत् स्वयं जिसके प्रकाश से प्रकाशित है उसका ही तिरोधान करने में समर्थ नहीं हो सकता अपितु स्वयं ही उस प्रकाश में तिरोहित हो जाता है। यदि जगत् प्रकाश को तिरोहित कर ले तब स्वयं जगत् की सत्ता भी समाप्त हो जावेगी। इस प्रकार परमेश्वर वस्तु रूप जगत् का साधक भी है बाधक भी है एवं प्रमाण भी है।

साधक एवं बाधक के रूप में परमेश्वर की अनुसंधानात्मक प्रमातृता से जगत् का सद्भाव कल्पित किया गया है। अर्थात् जगत् पूर्व से ही परमेश्वर में कल्पित है वैसा ही सृष्टि के समय प्रकट करता है। श्रुति भी कहती है "यथा पूर्वमकल्पयत्"। सद्भाववादी किसी ऐसी वस्तु की सत्ता को स्वीकार नहीं करते

जिसका पूर्व में अस्तित्व न हो। अतः सिद्धान्त के अनुसार संहार दशा में जगत् का सर्वथा विनाश नहीं होता है अपितु केवल प्रकाश के अन्तः में तिरोधान होता है जो सृष्टि के समय पुनः स्फुरित होता है। इस सिद्धान्त को सत्कार्यवाद के नाम से व्यवहृत किया जाता है।

अब पूर्व पक्षी शङ्का करता है कि सद्भाव को सिद्ध करने के लिये क्या प्रमाण है। प्रष्ट्र रूप से पूर्व सिद्ध परमेश्वर के स्वयं प्रकाशत्व का सब को स्वयमेव संवेदन होता है यह स्वयं सिद्ध है। अर्थात् प्रश्न करता को स्वयं की सत्ता के रूप में स्व-प्रकाश परमेश्वर का आभास होता है अतः जो स्वयं सिद्ध है उसकी सिद्धि के हेतु प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त यह तर्क है कि जिस परमेश्वर के प्रकाश के आश्रय से स्वयं प्रमाण में भी प्रामाणिकता का उद्रेक होता है उसको सिद्ध करने के हेतु किसी अन्य प्रमाण की क्या आवश्यकता हो सकती है। वास्तविकता यह है कि परिभाषा के अनुसार प्रमाण की गति केवल अभिनव आभास रूप प्रमाता तक ही सीमित है। जो अभिनव आभास रूप प्रमाता में प्रमिति लक्षणा विश्रान्ति की धारणा करता है उसको प्रमाण नाम से सम्बोधित किया गया है। ('प्रमाणं नाम अभिनवाभासरूपं प्रमातरि प्रमिति-लक्षणां विश्रान्ति विदधत् प्रमाणं भवति"।) अतएव अविच्छिन्न आभास रूप नित्य प्रकाशमान प्रमाता उपर्युक्त लक्षण रूप प्रमाण से तथा उसके अधीन प्रमाणित होने वाले नील, सुख आदि वेद्य पदार्थों से परे है, तथा समस्त प्रमितियां उसके अन्तर्मुख हैं अतएव जगत् के परम प्रकाश रूप प्रमाता को अधः स्थित प्रमाण कैसे सिद्ध करने में समर्थ हो सकता है।

इस प्रकार परम शिव, जिनके अन्तः में समस्त विश्व की प्रकाशक अ से ह पर्यन्त वर्णराशि गर्भित है, एवं जो पूर्ण अहन्तात्मक परामर्श के सार हैं, वही (परमशिव) षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मक प्रपञ्च रूप हैं। अर्थात् पूर्ण अहंतात्मक अनुभूति के सार भूत परम शिव ही विश्व के छत्तीस तत्त्वों के रूप में प्रकाशित हैं।

छत्तीस तत्त्वों के नाम तथा रूप (परिभाषा) नीचे लिख रहे हैं :-

१) **शिव तत्त्व**–इच्छा ज्ञान-क्रियात्मक केवल पूर्णानन्द स्वभाव रूप परम शिव ही शिव तत्त्व के नाम से व्यवहृत हैं।

२) **शक्ति तत्त्व**–जब परमेश्वर जगत् की सृष्टि करने की इच्छा करता है तब सर्व प्रथम इच्छा शक्ति नामक तत्त्व का स्पन्द होता है। कारण यह है कि परमेश्वर ही अप्रतिहत अर्थात् अनवरुद्ध इच्छा का अनवच्छिन्न श्रोत है।

३) **सदाशिव तत्त्व**––सत् ही अपने अहं अंश से आच्छादित कर इदं नामक जगत् के रूप में अंकुरित होता है, इसका सदाशिव नाम से उल्लेख करते हैं।

४) **ईश्वर तत्त्व**–अङ्कुरित जगत् जब इदंता से अहं अंश को सिञ्चित करता है तब ईश्वर तत्त्व का उद्रेक कहा जाता है। जगत् के बाह्य उन्मेष को ईश्वर कहते हैं तथा अन्तः उन्मेष को सदाशिव।

५) **शुद्ध-विद्या तत्त्व**–अहंता तथा इदंता का ऐक्यात्मक ज्ञान शुद्ध–विद्या है।

६) **माया**–अपने ही स्वरूपात्मक भावों के भेद–ज्ञान का नाम माया है।

७) **पुरुष**–जब परमेश्वर अपनी पारमेश्वरी माया शक्ति के द्वारा अपने स्वरूप को प्रच्छादित कर संकुचित ग्राहकता (अणुरूप) को ग्रहण करता है तब उसकी संज्ञा पुरुष होती है। यही पुरुष जब माया से मोहित होकर कर्म के बन्धन में फंस जाता है तब संसारी कहा जाता है। यद्यपि यह संसारी परमेश्वर से अभिन्न है तथापि इसके मोह से परमेश्वर उसी प्रकार प्रभावित (मोहित) नहीं होता है, जिस प्रकार ऐन्द्रजालिक (जादूगर) अपनी इच्छा से सम्पादित इन्द्रजाल की भ्रान्ति में मोहित नहीं होता है। विद्या के प्रभाव से चिद्घन पुरुष को अपने ऐश्वर्य का अभिज्ञान होता है अतः यह मुक्त परम शिव रूप ही है। इस पुरुष की सर्वकर्तृत्व, सर्वज्ञत्व, पूर्णत्व, नित्यत्व, व्यापकत्व नामक शक्तियां यद्यपि असंकुचित हैं तथापि संकोच ग्रहण करने से इनका कला, विद्या, राग, काल, नियति संकुचित रूप में आविर्भाव होता है।

८) **कला-तत्त्व**–कला नामक तत्त्व से पुरुष की सर्वकर्तृता शक्ति किंचित् कर्तृत्व में परिवर्तित हो जाती है।

९) **विद्या**–विद्या किञ्चित् ज्ञत्व का कारण है। विद्या से पुरुष का सर्वज्ञत्व किंचित् ज्ञातृता में बदल जाता है।

१०) **राग**-परमेश्वर की परिपूर्ण तृप्ति शक्ति अणुरूप में जब परिमित हो जाती है तब यह अपूर्णत्व में ही राग करने लगता है।

११) **काल**–भासित अथवा अनाभासित भावों के क्रम के अवच्छेदक का नाम काल है। जो भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान रूप में व्यवहृत होता है। ज्ञान एवं क्रिया के स्वरूप से भावों की कल्पना कर अवच्छेद करता है। जैसे आज्ञासिषं, जानामि,

ज्ञास्यामि इति तथा अकार्षं, करोमि, करिष्यामि भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान काल के रूप में ज्ञान एवं क्रिया का भेद काल द्वारा किया जाता है।

काल क्रिया का अर्थ है–"क्षेपो ज्ञानञ्च, संख्यानं गतिर्नाद इति क्रमात् ।"

क्षेप का अर्थ है "स्वात्मनो भेदनं क्षेपो भेदितस्याविकल्पनं" अर्थात् क्षेप का अर्थ स्वात्मा का नाना रूपों में भेदन तथा भेदात्मक विकल्प का पुनः निर्विकल्प आत्मज्ञान के रूप में अभेदात्मक परामर्श ।

कल गतौ=गति का अर्थ ज्ञान है भेदात्मक ज्ञान से संसार तथा अभेदात्मक ज्ञान निर्विकल्प-ज्ञान ।

भेदने=वहिरुल्लनम् । अर्थात् बाह्य जगत् के रूप में स्फुरण।

अविकल्पनं=स्वात्माभेदेन परामर्शः । अर्थात् आत्मा की अभेदात्मक अनुभूति ।

इस प्रकार काल के द्वारा भेदात्मक एवं अभेदात्म ज्ञान की अनुभूति होती है।

१२) **नियति**–मेरा यह कर्तव्य है अथवा यह कर्तव्य नहीं है इसके नियमन का हेतु नियति है।

कला, विद्या, राग, काल, नियति पञ्चक परमेश्वर के स्वरूप के आवरक होने से कञ्चुक नाम से कहे जाते हैं।

१३) **प्रकृति**–महत् से पृथ्वी पर्यन्त तत्त्वों की मूल कारण प्रकृति है। प्रकृति का रूप अविभक्त है एवं यह सत्त्व, रज, एवं तम गुणों की साम्यावस्था है।

१४) **बुद्धि**–निश्चय कारिणी एवं विकल्प के प्रतिबिम्ब को धारण करने वाली शक्ति का नाम बुद्धि है। यह इस प्रकार है तथा इसका ऐसा रूप है इसको निश्चय कहते हैं।

बुद्धि सत्त्व प्रधान है अतः स्वच्छता का गुण होने से इसमें विकल्प के प्रतिबिम्ब को धारण करने की योग्यता है।

१५) **अहङ्कार**–यह मेरा है तथा यह मेरा नहीं है इस प्रकार अभिमान के साधन का नाम अहङ्कार है।

१६) **मन**–संकल्प का साधन मन है। बुद्धि, अहंकार एवं मन को एकत्र करके अन्तःकरण कहा जाता है।

१७ से २१) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धात्मक विषयों को ग्रहण करने के साधनों का नाम क्रम से श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण पञ्च ज्ञानेन्द्रियां हैं।

२२ से २६) वचन, आदान, विहरण, विसर्ग, आनन्द आत्मिक क्रिया साधनों की परिपाटी को वाक्, पाणि, पाद, पायु एवं उपस्थ पञ्च कर्मेन्द्रियों के नाम से कहा जाता है।

२७ से ३१) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध नामक पञ्च तन्मात्राएँ सामान्य हैं।

३२) **आकाश**–अवकाश प्रद है।

३३) **वायु**–संजीवन तत्त्व है।

३४) **अग्नि**–दाहक है तथा पाचक है।

३५) **सलिल**–आप्यायक है एवं द्रव पदार्थ है।

३६) **पृथ्वी**–भूमि धारक है।

॥ २ ॥

यथा न्यग्रोध बीजस्थः शक्ति रूपो महाद्रुमः ।
तथा हृदय बीजस्थं विश्वमेतच्चराचरम् ॥

पद्यानुवाद

शक्ति रूप न्यग्रोध महाद्रुम
यथा बीज में अर्न्तभूत ।
तथा हृदयबीजस्थ चराचर
विश्व हुआ है प्रादुर्भूत ॥

॥ २ ॥

संस्कृत टीका

इत्याम्नाय नीत्या पराभट्टारिकारूपे हृदयबीजेऽन्तर्भूत-मेतज्जगत् । कथं ?—यथा घटशरावादीनां मृद्विकाराणां पार-मार्थिकं रूपं मृदेव, यथा वा जलादि द्रव जातीनां विचार्यमाणं व्यवस्थितं रूपं जलादि सामान्यमेव भवति, तथा पृथिव्यादि-मायान्तानां तत्त्वानां सतत्त्वं मीमांस्यमानं सदित्येव भवेत्, अस्यापि पदस्य निरूप्यमाणं धात्वर्थव्यञ्जकं प्रत्ययांशं विसृज्य प्रकृतिमात्ररूपः सकार एवावशिष्यते, तदन्तर्गतमेकत्रिंशत्तत्वम् ततः पर शुद्धविद्येश्वरसदाशिव तत्त्वानि ज्ञानक्रियासाराणि शक्तिविशेषत्वात् औकारेऽभ्युपगमरूपेऽनुत्तर शक्तिमयेऽन्तर्भू-तानि । अतः परमूर्ध्वाधः सृष्टिरूपो विसर्जनीयाः, एवं भूतस्य हृदयबीजस्य महामन्त्रात्मको विश्वमयो विश्वोत्तीर्णः परमशिव

एवोदयविश्रान्तिस्थानत्वान्निजस्वभावः । ईदृशं हृदयबीजं तत्त्वतो यो वेद समाविशति च स परमार्थतो दीक्षितः । प्राणान् धारयन् लौकिकवद्वर्तमानो जीवन्मुक्त एव भवति, देहपाते परमशिवभट्टारक एव भवति ॥२॥

भाषा टीका

यथा वट बीज के अन्तर्गत उसके शरीर के आकार के समुचित अंकुर, पत्र, फल आदि की स्थिति होती है उसी प्रकार हृदय बीज में नाना प्रकार के शरीर, इन्द्रियों आदि के वैचित्र्य से युक्त यह विश्व स्थित रहता है ।

विश्व हृदय बीज के अन्तः में किस प्रकार स्थित है इसको स्पष्ट करते हैं । जिस प्रकार घट एवं शराब आदि पात्र मृत्तिका के विकार होने से पारमार्थिक दृष्टि से मृत्तिका (मिट्टी) ही है, एवं जैसे जल आदि द्रव्य जाति से उद्धृत आकारों का सामान्य जल ही है, उसी प्रकार पृथ्वी से माया पर्यन्त तत्त्वों की यदि सतत्त्व मीमांसा की जावे तब सत् ही अवशिष्ट रहता है । सत् पद की भी मीमांसा की जाकर धात्वर्थ व्यञ्जक प्रत्यय के अंश को छोड़ दिया जावै तब प्रकृति मात्र रूप सकार शेष रह जावैगा । सकार के अन्तर्गत पृथ्वी से माया पर्यन्त एकतीस तत्त्वों का समावेश है । इसके उपरान्त शुद्ध-विद्या, ईश्वर, सदाशिव ज्ञान-क्रिया रूप तीन तत्त्व शक्ति के विशेष रूप होने से अनुत्तर-शक्ति-मय अभ्युपराम रूप औकार के अन्तर्गत समाविष्ट हैं । इसके परे ऊर्ध्व एवं अधः बिन्दु में सृष्टि रूप विसर्ग की स्थिति है । इस प्रकार शिव से पृथ्वी पर्यन्त षट त्रिंशत् तत्त्वों के वाचक महामन्त्रात्मक सौः बीज का अवि-

र्भाव होता है । यह सौः ही हृदय बीज है अर्थात् स्वरसोदित परावागात्मक स्वातन्त्र्य शक्ति का वाचक है ।

शक्ति एवं शक्तिमान में अभेद प्रतिपादित है अतः हृदय बीज सौः का उदय एवं विश्रान्ति स्थान होने के कारण महा-मन्त्रात्मक विश्वमय एवं विश्वोत्तीर्ण परमशिव ही निज स्वभाव है । (अर्थात् परमशिव ही सौः बीज का निज स्वभाव है)

इस प्रकार जो हृदय बीज को तत्त्वतः जानता है वह समाधिस्थ हो जाता है तथा तिल, आज्य, आहुति के विना ही वह दीक्षित है । इस प्रकार साधक प्राण धारण किये हुए भी अर्थात् लौकिक मनुष्यों के समान व्यवहार करता हुआ भी जीवन्मुक्त हो जाता है तथा देहपात होने पर परमशिवत्व प्राप्त करता है ।